इकाई 11 ताम्र पाषाण युग तथा आरंभिक लौह युग-II

इकाई की रूप रेखा

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में दक्षिण भारत के आरंभिक कृषक समुदायों तथा उसके बाद के लौह युग का विवरण दिया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे:

- दक्षिणी भारत की प्रारम्भिक कृषि संस्कृति के क्रमिक चरण तथा उनकी बुनियादी विशेषताएँ,
- इन संस्कृतियों की बस्तियों, अर्थव्यवस्था तथा अन्य पक्षों का स्वरूप,
- इस क्षेत्र में प्रारम्भिक लौह युग की विशिष्टताएँ।

11.1 प्रस्तावना

अब तक आप मानव जाति के आखेटन संग्रहण अवस्था से स्थायी कृषिगत् समुदाय की अवस्था में विकास से भली-भाँति परिचित हो चुके होंगे। आपने हड़प्पा सभ्यता तथा उससे सम्बद्ध विभिन्न पक्षों की भी जानकारी प्राप्त की है। तदुपरांत, पिछली इकाई में आपने यह भी देखा कि हड़प्पा सभ्यता के पतन के पश्चात् किस प्रकार द्वितीय सहस्राब्दी ईसा पूर्व से लेकर प्रथम सहस्राब्दी ईसा पूर्व के समय के दौरान विभिन्न संस्कृतियों का उदय हुआ। इस इकाई में इसी काल के दौरान दक्षिण भारत में हुए विकासों पर प्रकाश डाला जाएगा। इस इकाई में अध्ययन के केन्द्र बिन्दु इस काल की भौतिक संस्कृति, बस्तियों के स्वरूप में आए परिवर्तन तथा सामाजिक संगठन होंगे।

11.? आरंभिक कृषक बस्तियाँ

दक्षिण भारत में आरंभिक कृषक समुदायों की बस्तियाँ तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व में अचानक अस्तित्व में आती है। आखेटन संग्रहण अर्थव्यवस्था से खाद्योत्पादन अर्थव्यवस्था की ओर क्रमबद्ध विकास (जैसा कि पश्चिमी एशिया में हुआ) के कोई प्रमाण नहीं मिले। इन क्षेत्रों से मिलने वाले प्रमाण इस दिशा की ओर संकेत करते हैं कि गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्र, पेनेरु तथा कावेरी नदियों के निकट खेती तथा जानवरों के लिए उपयुक्त क्षेत्रों का एक प्रकार से उपनिवेशीकरण हो गया था। अधिकतर स्थानों पर यह बस्तियां अर्धअसर कम वर्षा वाले तथा चिकनी मिट्टी के बालू वाले क्षेत्रों में फैली हुई थी। ये क्षेत्र खुश्क खेती तथा चरवाही (गाय, बैल तथा भेड़, बकरी) के लिये उपयुक्त थे। इन बस्तियों की विशिष्टताएं निम्नलिखित हैं:

1 स्थिर ग्रामीण बस्तियाँ जिनके घर तथा अन्य भवन अर्धस्थायी और स्थायी दोनों ही प्रकार के थे। स्थायी इमारतों में सरपत से बने ढांचों पर लिपायी की जाती थी।

2 पत्थरों की कुल्हाड़ियाँ (भूरी चट्टानों जैसे सख्त पत्थरों से बनी) जो कि घिसाई तथा चमका कर बनायी जाती थी। इस तकनीक के कारण आरंभिक कृषक संस्कृतियों के पत्थर के औजारों के उद्योग को चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों का उद्योग कहा जाता है।
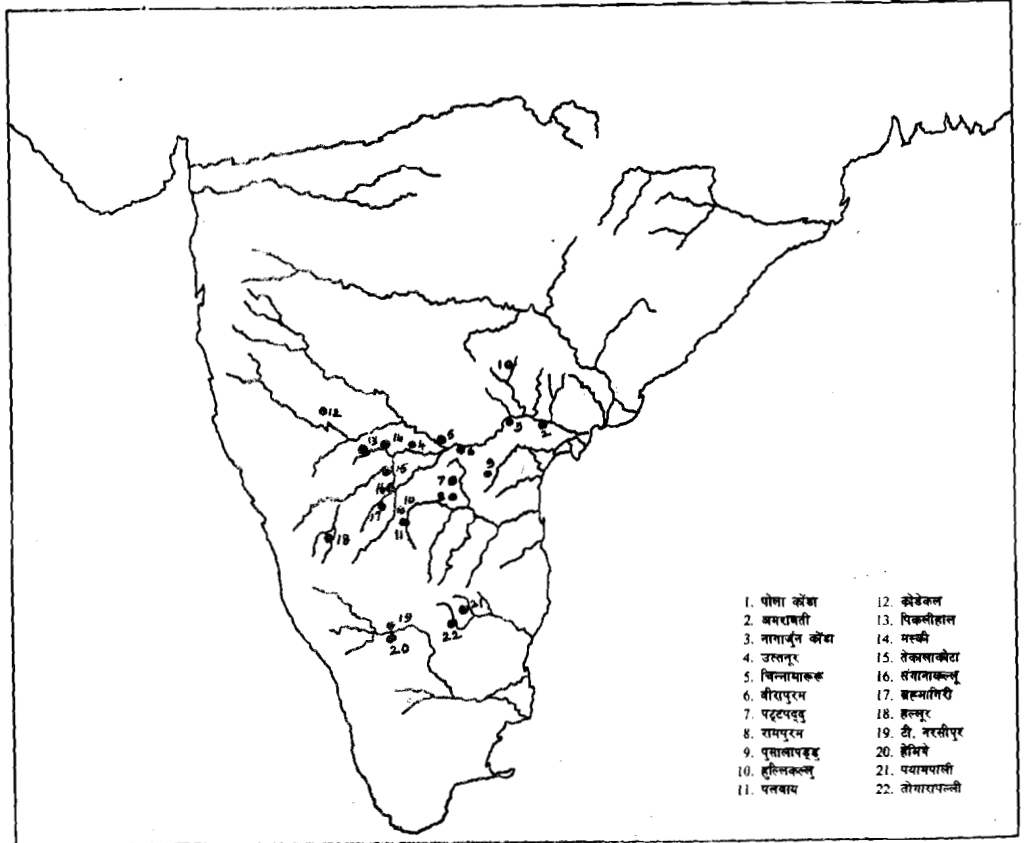
चित्र 21. दक्षिण भारत में प्रमुख नवपाषाण तथा ताम्र पाषाण बस्तियाँ

3 चकमकी, सूर्यकांत, सिक्थस्फटिक तथा अफीक जैसे पत्थरों से बनाए गए लम्बे एवं पतले फलक। इन औजारों में काटने की धार चमकाई गयी प्रतीत होती है जिससे पता चलता है कि यह औजार फसल काटने के लिए प्रयोग किए जाते थे।

4 आरंभिक चरणों में हाथ से बनाए गए बर्तन तथा बाद के चरणों में चाक पर बनाए जाने वाले बर्तन।

5 ज्वार बाजरे की खेती तथा गाय बैल एवं भेड़ बकरियों के पालन पर आधारित अर्थव्यवस्था। इस प्रकार यह अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पशुपालन पर आधारित है।

6 भोजन की आवश्यकताएँ जंगली जानवरों से पूरी की जाती थीं।

11.2.1 सांस्कृतिक चरण

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर हम दक्षिण भारत में आरंभिक कृषक समुदाय के विकास के मोटे तौर पर तीन चरण इंगित कर सकते हैं।

चरण I

इन खेतिहर समुदायों की प्राचीनतम बस्तियाँ प्रथम चरण का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह बस्तियाँ पहाड़ियों के शिखरों अथवा पहाड़ियों के निकट समतल स्थानों अथवा दो या दो से अधिक पहाड़ियों के बीच की घाटियों में बनी थीं। इस चरण की भौतिक संस्कृति चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों का उद्योग, फलक, फलक युक्त औजार तथा हाथों से गढ़े बर्तनों पर आधारित थी।

बर्तनों में धूसर अथवा सलेटी रंग के मिट्टी के बर्तनों की अधिकता है। चमकाए हुए चिकनी मिट्टी के लाल अथवा काली धारी वाले बर्तन कम संख्या में हैं यह बर्तन अक्सर बैंगनी रंग से अलंकृत किए जाते थे। यह प्राचीनतम बस्तियाँ राख के टीलों से संबंधित थी जिनमें से कुछ में खुदाई की गई हैं। उनमें प्रमुख हैं—उतनूर, कूपयाल, कोडेकाल, पालावाय, पिकलीहाल मस्की, यह स्थल इन कृषक पशुपालक समुदाय की बस्तियों के प्रथम चरण के विशिष्ट उदाहरण हैं। रेडियोकार्बन तिथियों के आधार पर इस चरण का काल 2500-1800 ईसा पूर्व रखा जा सकता है।

चरण II

इस चरण में भी प्रथम चरण की बस्तियों की यथास्थिति बनी रहती है। अभी भी बस्तियाँ पहाड़ियों के शिखर पर अथवा पहाड़ियों से जुड़े समतल स्थान पर बसती थीं। तथापि कुछ महत्वपूर्ण प्रगति अवश्य दिखायी देती है। बस्तियों में गोलाकार झोंपड़ियाँ लकड़ी के ढांचे पर सरपत लगाकर बनाई जाती थी और उस पर लिपाई होती थी तथा फर्श मिट्टी के गारे से तैयार किया जाता था। नर्गार्जुन कोंडा (तटीय आंध्र में) में मिले कुछ बड़े गड्ढे जोकि गोलाकार, चौकोर, तथा अनियमित हैं। यह गड्ढे अर्धभूतलीय आवासी के रूप में देखे जाते हैं। भूतलीय आवासी पद्धति परयामपाली एवं वीरापुरम में मिलती है। इस चरण में नए प्रकार के बर्तन बनाने की परंपरा आरंभ होती है जैसे टोंटी वाले तथा छिद्रित बर्तन। इस प्रकार के बर्तनों के प्राप्त होने से इस क्षेत्र के उत्तरी क्षेत्रों के साथ संबंध की ओर संकेत मिलता है क्योंकि इसी प्रकार के बर्तन उत्तरी क्षेत्रों में भी प्राप्त हुए हैं। इस चरण में बर्तनों के बाहय तल के खुरदरे करने की तकनीक आरंभिक हड़प्पा युग की तकनीक अपनाए जाने का प्रतीक है। इस चरण में चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों एवं फलकों के उद्योग का प्रसार हुआ। ताम्र एवं कांस्य की वस्तुएं प्रथमतः इसी चरण में मिलती हैं जिनकी संख्या चरण की समाप्ति तक काफी बढ़ जाती है। कुछ स्थल जहां चरण II की बस्तियाँ प्राप्त हुई हैं वे हैं, पिकलीहाल, ब्रह्मागिरी, संगानाकालू, तेकालाकोटा, हल्लूर तथा टी. नारसीपुर, रेडियो कार्बन तिथियों के अनुसार इस चरण का काल 1800-1500 ईसा पूर्व निश्चित किया जा सकता है।

चरण III

इस चरण की महत्वपूर्ण प्रगति ताम्र तथा कांस्य के औजारों में वृद्धि है। यह वृद्धि तेकाला कोटा, हल्लूर, पिकलीहाल, संगानाकालू, ब्रह्मागिरी तथा पययामपाली में देखने

को मिलती हैं। पत्थर की कुल्हाड़ियों एवं फलकों का उद्योग यथावत बना रहता है। बर्तनों में सख्त पार्श्व वाले सलेटी एवं धूसर बर्तनों का उपयोग काफी सामान्य प्रतीत होता है।

एक अन्य प्रकार के मृद्भाण्ड, जो कि चाक से बनाए गए हैं, बैंगनी रंग से रंगे गए तथा बगैर चमकाए गए रूप में मिलते हैं। यह बर्तन महाराष्ट्र के ताम्र पाषाण युगीन जार्वे बर्तनों से मिलते-जुलते हैं। इस आधार पर इस चरण का काल 1400-1550 ईसा पूर्व रखा जा सकता है।

यह तीनों चरण दक्षिण भारत में आरंभिक खेतिहर पशुपालक बस्तियों के उदय एवं विस्तार को दिखाते हैं। चरण I से चरण III के बीच व्यवसायों में निरंतरता दिखाई देती है (जैसा कि कई स्थलों पर खुदाई से प्रमाण मिले हैं) और अर्थव्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नजर नहीं आता। अंतर केवल इतना है कि चरण I में ताम्र एवं कांस्य के औजार नहीं मिलते। चूंकि चरण II तथा चरण III के व्यवसायों में इन धातु औजारों का प्रथमतः प्रयोग किया गया अतः इन्हें नवपाषाण—ताम्र पाषाण युगीन कहा जाता है।

बस्तियों के फैलाव से पता चलता है कि निचली पहाड़ियों के निकट मुख्य जल स्रोतों से हट कर किंतु नदियों से निकट के स्थलों को प्राथमिकता दी जाती थी तथा गर्म काली मिट्टी वाली भूमि लाल तथा काली मिट्टी वाली बलुई उपजाऊ भूमि, बलुई उपजाऊ भूरी भूमि तथा डेल्टा की बाढ़ की मिट्टी वाले क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती थी। जहाँ यह बस्तियाँ मौजूद थीं वहां आज एक वर्ष में औसत वर्षा दर 600-1200 मिली मीटर है। यह स्थान सामान्यतः दीवारनुमा पहाड़ियों पर प्राकृतिक रूप से उभरे जगहों पर पाए जाते हैं तथा निवास स्थल पहाड़ियों के शिखर पर अथवा पहाड़ियों के एकदम नीचे होता है।

11.2.2 जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था

प्राकृतिक दृष्टि से स्थलों के चुनाव में ऐसे क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती थी जो ढलान वाले क्षेत्र हों जिससे कि सिंचाई की सुविधा स्वतः बनी रहे। तथापि ऐसे भी स्थल पाए गए हैं जहां नहर द्वारा सिंचाई करके पानी का उपयोग किया जा सकता था जैसे कृष्णा नदी के तट पर वीरपुरम, तुंगभद्र के तट पर हल्लूर, कावेरी तथा कपिल के संगम पर टी. नरसीपुर तथा कृष्णा के निकट बाढ़ की मिट्टी वाले क्षेत्र।

उपलब्ध पुरातत्व वानस्पतिक प्रमाणों से पता चलता है कि मुख्य फसलें बाजरा एवं दालें थी। रामापुरम् में हाल में ही बाजरे की विभिन्न किस्में जैसे ज्वार, चना, उड़द, मूंग, फलियाँ तथा जौ पायी गयी हैं।

जानवरों के संदर्भ में नवपाषाण तथा ताम्र पाषाण युग के स्थलों से खुदाई में प्राप्त सभी अवशेष पालतू एवं जंगली दोनों ही प्रकार के जानवरों के अस्तित्व की ओर संकेत करते हैं।

पालतू जानवरों में गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, सुअर, कुत्ते तथा मुर्गी शामिल हैं। बैल लगभग हर स्थान पर पाए गए हैं, जिससे इन समुदायों की अर्थव्यवस्था में इनके महत्व की ओर संकेत मिलता है। उदाहरण के लिए, वीरपुरम् के जानवरों के अवशेष जिन पर गहन अध्ययन किया गया है।यहाँ गाय, बैलों की संख्या कुल पालतू जानवरों की संख्या का 48.68% है जबकि भेड़/बकरी केवल 5.4% पाए गए हैं। यदि कृष्णा के दाहिने तट पर, जोकि सिंचाई वाली खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान हैं, यह स्थिति थी तो अपेक्षाकृत ऊपरी स्थानों पर बैलों का महत्व निश्चित रूप से और अधिक रहा होगा। चूंकि इन समुदायों की अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन (गाय, बैल अधिक तथा भेड़/बकरी कम) पर आधारित थी, इसलिये इस व्यवस्था को खेतिहर पशुपालक अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है।

इन पालतू जीवों के साथ-साथ इन बस्तियों से जंगली जानवरों के भी अवशेष मिले हैं। यह जानवर साही, नीलगाय, चिकारा, काले हिरन, सांबर और चीतल हैं। इससे यह पता चलता है कि भोजन में मांस की आवश्यकताएं जंगली जानवरों से भी पूरी होती थी।

11.2.3 भौतिक संस्कृति

इस युग की भौतिक संस्कृति बर्तनों, पत्थर के औजारों, ताम्र/कांस्य की वस्तुओं तथा अन्य वस्तुओं पर आधारित थी।

1 **बर्तन** : चरण I (2500 से 1800 ई.पू.) के बर्तन मुख्यत: हाथ से बनाए गए सलेटी अथवा मटमैले भूरे होते थे। सलेटी बर्तनों की विशेषता बर्तनों को पकाने के बाद उन पर लाल गेरू से रंगाई करना थी। रूचिकर तथ्य यह है कि इन बर्तनों में से कुछ ऐसे हैं जिनके पाए खोखले तथा वृत्ताकार हैं जो कि हड़प्पा पूर्व आमरी तथा काली बंगन में मिले बर्तनों की किस्मों से मिलते-जुलते हैं। चरण I से संबंधित मृद्भाण्ड की एक अन्य किस्म में चमकाए हुए काले एवं लाल बाह्य भाग वाले बर्तन जो बैंगनी रंग से रंगे जाते थे, मिलते हैं।

चरण II (1800-1500 ई. पू.) में चमकाए हुए काली एवं लालधारी वाले बर्तनों का चलन समाप्त हो जाता है और एक अन्य किस्म सामने आती है। यह किस्म छिद्रित तथा टोटी वाले बर्तनों की है। मृद्भाण्ड तैयार करने में बाहरी भाग को खुरदरा बनाने की तकनीक अपनाई जाती थी जोकि हड़प्पा पूर्व बलूचिस्तान के इलाकों में सामान्य थी।

चरण III (1400-1050 ई. पू.) में जो नए मृद्भाण्ड चलन में आए वे हैं :

अ) सख्त ऊपरी भाग वाले सलेटी एवं धूसर मृद्भाण्ड।
ब) चाक से बनाए गए बैंगनी रंग से रंगे बगैर चमकाए मृद्भाण्ड।

यह दूसरी किस्म के बर्तन महाराष्ट्र के जोर्वे किस्म से मिलते-जुलते हैं जो कि दक्षिणी दकन तथा उत्तरी दकन के बीच सांस्कृतिक संबंधों की ओर संकेत करता है। बर्तनों की किस्मों में विभिन्न प्रकार के प्याले (उडेंलने के लिए विशिष्ट मुख वाले प्याले, टोंटी वाले प्याले, दस्ता लगे हुए तथा खोखले पाए वाले प्याले) जार, स्टैंड युक्त डोगें तथा छिद्रित एवं टोंटी वाले बर्तन मिलते हैं।

2 **पत्थर के औजार तथा हड्डियों की शिल्पकृति:** पत्थर के फलकों के उद्योग में लम्बे, पतले, समानांतर दिशा वाले फलक, जिनमें से कुछ अतिरिक्त शिल्प कार्य के द्वारा अन्य रूप ले लेते थे, मिले हैं। अतिरिक्त शिल्प वाले इन रूपों में चांदनुमा फलक, 90 अंश के दो कोण बनाते फलक त्रिकोणीय फलक तथा आरी वाले फलक शामिल हैं। सामानांतर दिशा वाले कुछ फलकों में काटने की धार के पास कांच लगा पाया गया है जिसके कारण इन फलकों का फसल की कटाई में इस्तेमाल किया जाता था। कई पत्थर के औजारों पर पॉलिश की गई प्रतीत होती है। पॉलिश की गयी अथवा पत्थर की कुल्हाड़ी के उद्योग की सबसे सामान्य किस्म त्रिकोणीय कुल्हाड़ी है जिसका एक सिरा अंडाकार तथा दूसरा नुकीला है। अन्य किस्में हैं—बसुला, फाल, छेनी, रंदा तथा नुकीले औजार (जिन्हें कुदाल कहा गया है)

इनके अतिरिक्त पत्थर के अन्य औजार हैं—हथौड़े, गोफने के पत्थर, पीसने वाले पत्थर, घिसाई के पत्थर तथा हस्तचलित चक्की। हस्तचलित चक्की खाद्य अनाज तैयार करने के काम आती थी।

हड्डियों के शिल्पकृति में शिल्पकृत हड्डियाँ, सीगें तथा प्रायः शाखायुक्त सीगें एवं सीप मिली हैं। सबसे सामान्य शिल्पकृति नुकीले छेनी के उपकरणों का है, एक स्थान पर (पालावय) बैलों के कंधे की हड्डी को घिसकर तैयार की गयी हड्डी की कुल्हाड़ी भी प्राप्त हुई है।

3 **धातु की वस्तुएँ**: जैसा कि पीछे देखा गया है, ताम्र एवं कांस्य औजार चरण II में प्रकट होते हैं और चरण III तक उनकी संख्या में काफी बढ़ोतरी हो जाती हैं। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण सीधी कुल्हाड़ियाँ तथा छेनियाँ हैं जो मालवा एवं महाराष्ट्र की पद्धति का अवशेष हैं। अन्य रूचिकर उपलब्धि कल्लूर में मिली श्रृंगिका तलवार है जिस पर (इकाई 10 में) ताम्र भंडारों के संदर्भ में चर्चा की गयी है।

विभिन्न स्थानों पर प्राप्त हुई ताम्र/कांस्य की अन्य वस्तुएं चूड़ियाँ, लच्छेदार कान की
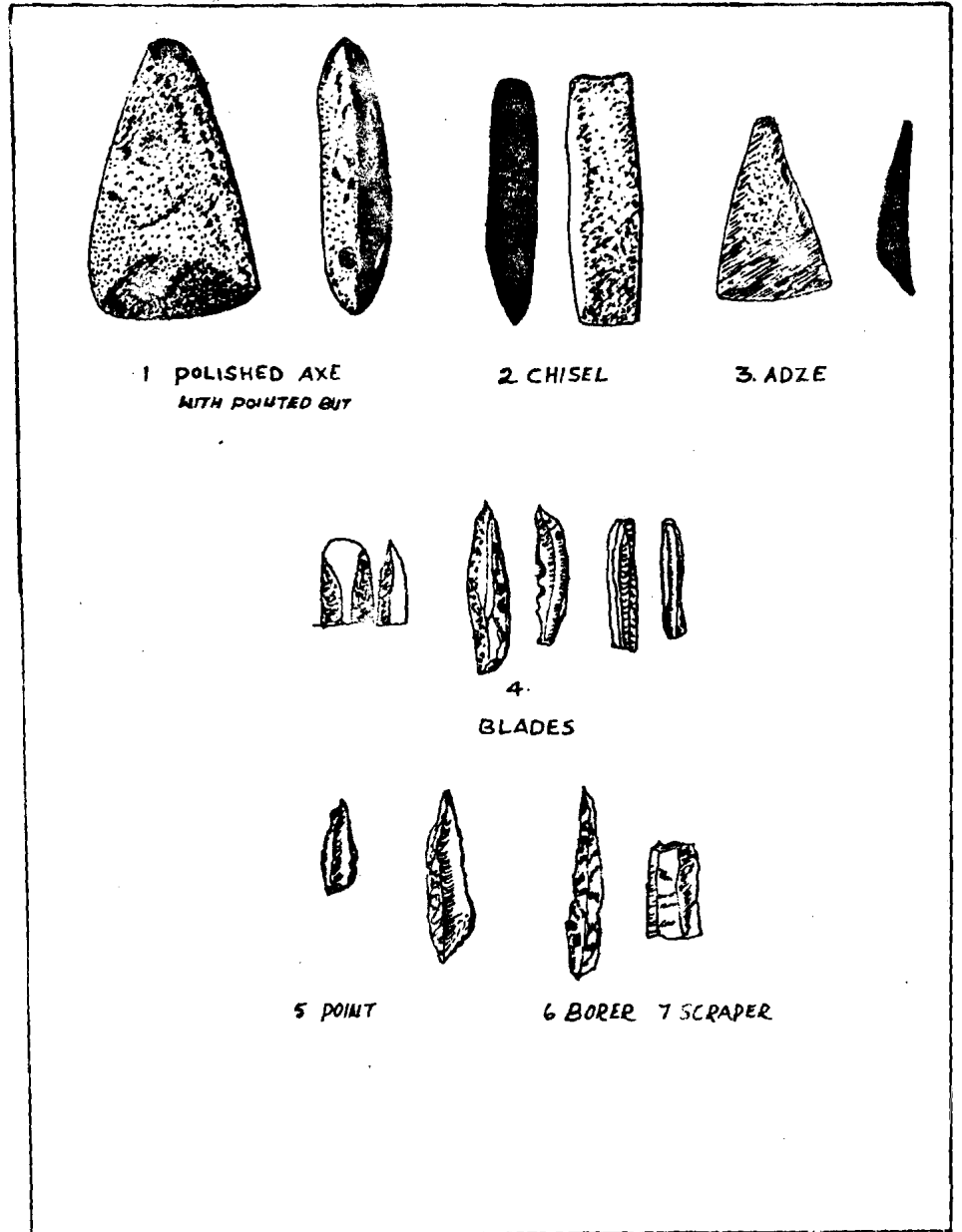
चित्र 22. दक्षिण भारत में नवपाषाण युगीन पालिश किये गये पत्थर के औज़ार 1. नुकीले दस्ते वाली पालिशदार कुल्हाड़ी 2. छेनी 3. बसूला 4. ब्लेड 5. नुकीले औज़ार 6. बेधक 7. खुर्चनी

बालियाँ तथा सुरमें की सलाईयाँ हैं, हल्लूर से एक मछली पकड़ने का कांटा भी मिला है। तेकालोकोटा में एक लच्छेदार कान की सोने की बाली भी मिली है।

4 **मनके एवं मिट्टी की प्रतिमाएँ:** कुछ स्थानों पर अर्ध बहुमूल्य पत्थरों के मनके प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिए, नागार्जुन कोंडा में लुगदी एवं स्टीटाइट पत्थर की चपटी गोलाकार मनकों की मालाएँ, मिट्टी की प्रतिमाएँ, जो कि हड़प्पा के उभरी हुई पीठ वाले बैलों की हैं पिकलीहाल जैसे कुछ स्थलों से प्राप्त हुई हैं।

इन्हें यदि कुपगाल, मस्की, पिकलीहाल आदि बस्तियों से प्राप्त बैलों के चित्रों के संदर्भ में देखा जाए तो इन संस्कृतियों में बैलों के महत्व की ओर संकेत मिलता है। इन चित्रों में बैलों को समूह में प्रसन्न मुद्रा में दर्शाया गया है तथा उभरी पीठ वाले सांड एवं लम्बे सीगों वाले बैलों को चित्रित किया गया है। कुछ बैलों की पीठें अलंकृत की गयी दर्शायी गयी हैं।

11.2.4 दाह संस्कार के तरीके

सामान्यतः शव घर के अन्दर दफनाए जाते थे, वयस्क दाह संस्कार में और शिशु कलशों में दफनाए जाते थे। तेकालाकोटा में खुदाई से (चरण III में) शवों को विभिन्न बर्तनों के साथ दफनाने के प्रमाण मिले हैं जो कि महाराष्ट्र में जोर्वे दाह संस्कार के अनुरूप था। नागार्जुन कोंडा में नवपाषाण युगीन कब्रिस्तान की पहचान की गयी है। कब्रों में शवों के साथ टोटी वाले बर्तनों सहित कुछ अन्य बर्तन तथा कुछ स्थानों पर पत्थर के फलक एवं कुल्हाड़ियाँ भी दफनाई जाती थीं।

11.3 नवपाषाण युगीन धारातल की उपलब्धियाँ

बस्तियों के अतिरिक्त पॉलिश की गयी पत्थर की कुल्हाड़ियाँ जंगली इलाकों के निर्जन स्थानों पर, जहां लोग कभी-कभी इकट्ठे होते होंगे मिली हैं। दक्षिण भारत में इस प्रकार के कई स्थान मिले हैं, बहुधा ऐसे स्थानों के निकट बस्तियाँ भी होती थी। यह वस्तुस्थिति किस तथ्य की और संकेत करती हैं? संभवतः यह स्थान गतिविधि केन्द्रों के रूप में प्रयोग होते होंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि औजारों (जैसी पेड़ काटने की कुल्हाड़ियों) के इस्तेमाल को देखते हुए यह चयनित स्थल पहाड़ी जंगली क्षेत्रों को साफ करके खुश्क खेती योग्य बनाने के लिए चुने गए होंगे।

तमिलनाडु के जंगली पहाड़ी क्षेत्र जैसे—स्लेवॉरी, जवाड़ी तथा तीरुमलाई पहाड़ी क्षेत्रों में इस प्रकार की नवपाषाण युगीन पत्थर की कुल्हाड़ियाँ पाया जाना सामान्य है। पश्चिमी तटों के दक्षिणी विस्तार के जंगली ढलानों से लेकर के निचले तमिल मैदानों तक नवपाषाण युगीन कुल्हाड़ियों का समानरूप से पाया जाना, झूम खेती (shifting cultivation) के तरीकों जो कि अभी कुछ समय पूर्व तक पश्चिमी तटों के दक्षिणी भाग में प्रचलित थे, के प्रचलन का द्योतक हैं।

दक्षिण भारतीय नवपाषाण युग में भी राख के टीले मिलते हैं जो कि भीम-कृष्णा तुंगभद्र दोआब के अर्ध ऊसर भागों तक फैले हुए हैं। 60 से अधिक राख के टीले खोजे जा चुके हैं और इनमें से कुछ काफी बड़े हैं। पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार, राख के यह टीले नवपाषाण युगीन समुदायों द्वारा गाय के गोबर को जलाने के कारण बने। उनके कथनानुसार, ये वे स्थान थे जो कि गाय बैलों के बांड़ों के रूप में प्रयोग किए जाते थे जहां गोबर इकट्ठा किया जाता था। रेमंड अलचिन ने उतनूर (राख का एक टीला) की खुदाई से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह परिणाम निकाला कि राख के टीले नवपाषाण युगीन लोगों के जानवरों के जंगली पड़ाव थे तथा गोबर का जलाया जाना संभवतः कर्मकांडी महत्व रखता था।

जैसा कि पहले कहा गया है कि दक्षिण भारत में शिकारी संग्रहकर्ता अर्थव्यवस्था से ग्रामीण खेतिहर समुदाय की ओर विकास को प्रमाणित करने के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। जैसा कि हमने देखा कि इन क्षेत्रों में तीसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व के लगभग मध्य में अचानक ग्रामीण बस्तियाँ अस्तित्व में आ गयी। यह खेतिहर बस्तियाँ कैसे अस्तित्व में आयी?

कुछ पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार, धूसर मृद्‌भाण्ड उत्तर-पूर्वी ईरान में हिसार, तुरंग तेप तथा शाह तेप स्थलों पर प्राप्त हुए मृद्‌भाण्ड से मिलते-जुलते हैं और लाल एवं काले रंगे हुए बर्तन बलूचिस्तान तथा हड़प्पा पद्धति के पूर्व हड़प्पा बर्तनों के समरूप हैं। इन समानताओं तथा कुछ अन्य विशिष्टताओं के आधार पर इन पुरातत्व शास्त्रियों ने माना है कि दक्षिण भारतीय नवपाषाण युगीन संस्कृतियों का संभवतः कुछ भारत ईरान सीमांती क्षेत्रों के साथ संबंध रहा होगा।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही (✓) अथवा गलत (X) का चिह्न लगाएं।

i) दक्षिण भारत की भौतिक संस्कृति को विभिन्न चरणों में विभाजित करना संभव नहीं है। ( )
ii) पालतू जानवरों में गाय, बैल दक्षिण भारतीय आरंभिक कृषक समुदायों की अर्थव्यवस्था में काफी महत्वपूर्ण थे। ( )
iii) शिशु तथा वयस्कों दोनों के दाह संस्कार के तरीके एक जैसे थे। ( )
iv) किसी भी खुदाई से हड्डी निर्मित उपकरणों के पाए जाने के प्रमाण नहीं मिले हैं। ( )

2 दक्षिण भारत के आरंभिक कृषक समुदायों के सांस्कृतिक चरणों पर दस पंक्तियाँ लिखें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3 क्या दक्षिण भारतीय कृषक समुदाय की अर्थव्यवस्था को खेतिहर पशुपालक अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है?

....
....
....
....
....
....
....

4 विभिन्न स्थानों पर मिले राख के टीलों से क्या संकेत मिलते हैं? पाँच पक्तियाँ लिखें।

....
....
....
....
....

11.4 दक्षिण भारत में लौह युग

दक्षिणी भारत में लोहे का प्रयोग लगभग 1100 ईसा पूर्व के आस-पास आरंभ हुआ। समय का यह अनुमान हल्लूर में प्राप्त वस्तुओं के रेड़ियो कार्बन विश्लेषण के आधार
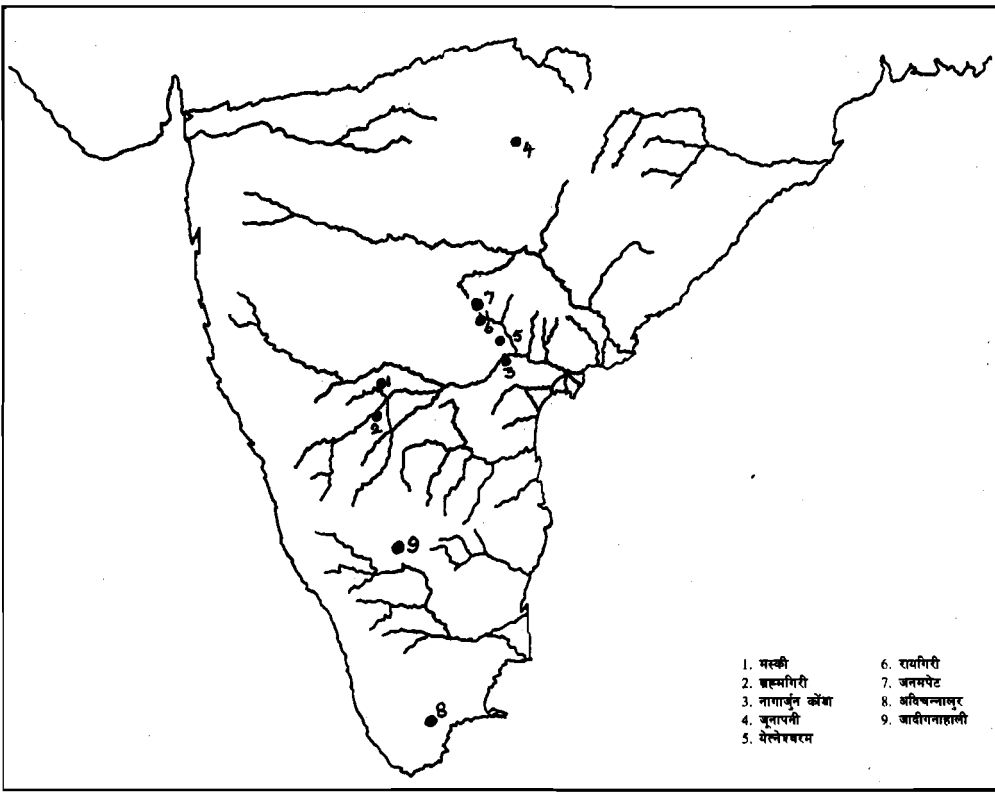
चित्र 23. दक्षिण भारत के महत्वपूर्ण लौह युगीन स्थल

पर लगाया गया है। तथापि कुछ अन्य स्थानों पर, जिनकी पीछे चर्चा की जा चुकी हैं, नवपाषाण युगीन तथा ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ लौह युग तक अपना अस्तित्व बनाए रहती हैं। उत्तरी दकन (महाराष्ट्र) में भी कई ताम्र पाषाण युगीन बस्तियाँ लौह युग में भी बनी रही। दक्षिणी दकन के ब्रह्मगिरी, पिकलीहाल, संगानाकालू, मस्की, हल्लूर, पयमवाली आदि में भी ऐसी ही स्थिति थी।

दक्षिण भारत में लौह युग का प्राचीनतम चरण पिकलीहाल तथा हल्लूर की खुदाई और संभवतः ब्रह्मगिरी के शव दफनाने व गड्ढों के आधार पर निश्चित किया गया है। इन शवाधान के गड्ढों में पहली बार लोहे की वस्तुएँ काले एवं लाल मृद्भाण्ड तथा फीके रंगे भूरे एवं लाल मृद्भाण्ड प्राप्त हुए। कुछ हद तक फीके रंगे भूरे एवं लाल मृद्भाण्ड जार्वे मृद्भाण्डों के समरूप हैं। इसी प्रकार के प्रमाण टेकवाड़ा (महाराष्ट्र) से भी प्राप्त हुए हैं। कुछ बस्तियों में पत्थर की कुल्हाड़ियाँ एवं फलक प्रयोग में बने रहें।

इसके बाद के चरण की विशेषता घिसकर चमकाए बगैर रंगे काले एवं लाल मृद्भाण्डों तथा लाल एवं काले मृद्भाण्डों की बहुतायता है।

11.4.1 महापाषाण युगीन संस्कृतियाँ

दक्षिण भारत से लौह युग के विषय में अधिकांश जानकारी महापाषाण कालीन कब्रों की खुदाई से मिलती हैं। महापाषाण से तात्पर्य उस काल से है, जब मृतकों को आबादी क्षेत्र से दूर कब्रिस्तानों में पत्थरों के बीच दफनाया जाता था। दक्षिण भारत में इस प्रकार के दफनाने की परंपरा लौह युग के साथ आरम्भ हुई। महापाषाण कालीन दफन करने के इस तरह की जानकारी बड़ी संख्या में निम्न स्थानों जैसे—महाराष्ट्र (नागपुर के पास), कर्नाटक (मस्की), आंध्रप्रदेश (नागार्जुन कोंडा), तमिलनाडु (अदिचनाल्लुर) तथा केरल में पायी गयी हैं।

महापाषाण कालीन शवों के दफनाने में कई तरीके देखने में आते हैं। कभी-कभी मृतकों की हड्डियाँ बड़े कलशों में जमा करके गड्ढे में दफनाई जाती थीं। इस गड्ढे के ऊपर पत्थरों से घेरा बनाया जाता था या केवल एक पत्थर से ढक दिया जाता था कभी-कभी दोनों ही चीजें की जाती थी, कलश और गड्ढों में कुछ वस्तुएं भी रखी जाती थीं। कुछ जगह शवों को पकाई हुई मिट्टी की शवपेटिकाओं में भी रखा गया

है। कुछ ऐसे भी उदाहरण देखने में आते हैं, जहाँ मृतक दफनाने के गड्ढ़े पत्थरों से बनाये गये हैं। ग्रेनाइट पत्थर की पट्टिकाओं से बने ताबूतनुमा कब्रों में भी शवों को दफनाने के उदाहरण मिलते हैं। केरल में पत्थर की चट्टानों में शव दफनाने के कुछ उदाहरण मिले हैं। कुछ जगह पत्थर को सीधा गाढ़ कर आयताकार या वर्गाकार छेदों में भी शव दफनाये गये हैं।
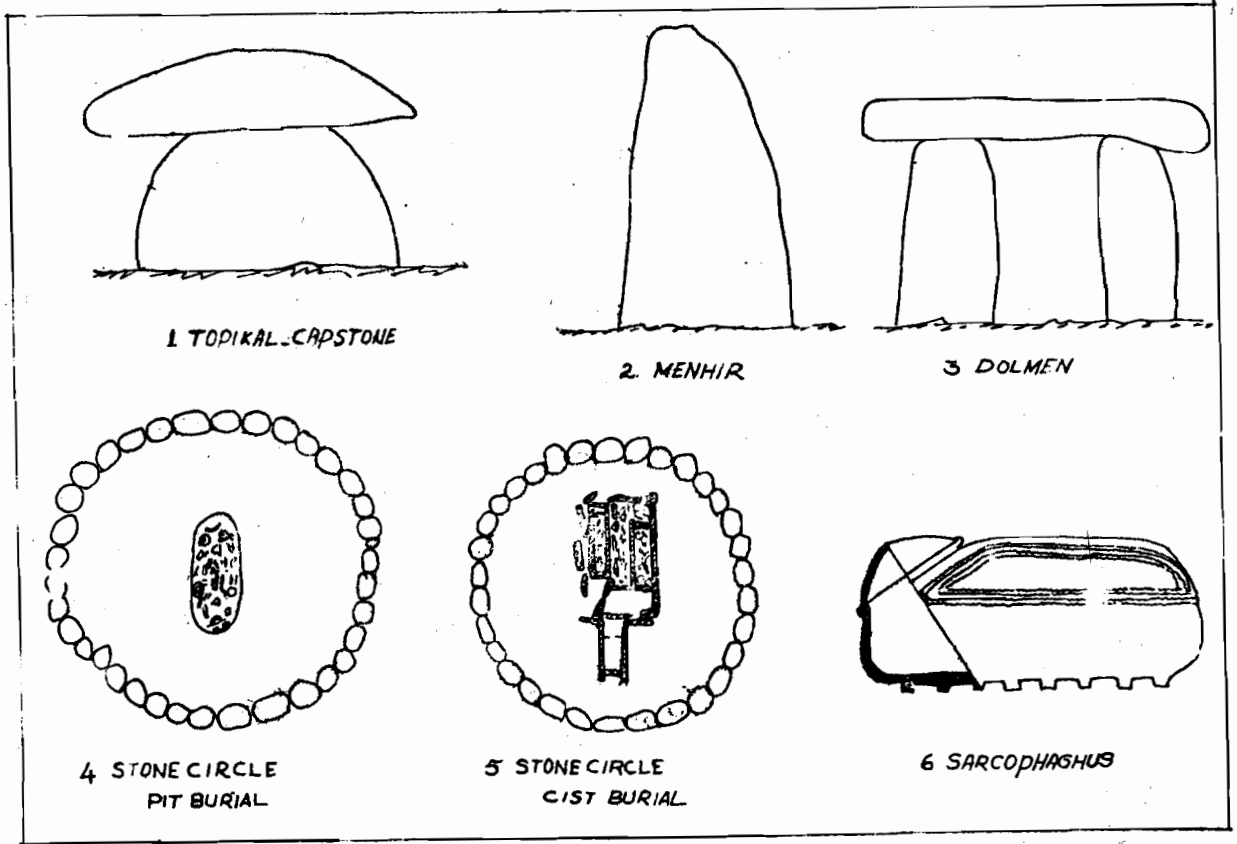
चित्र 24. महापाषाण काल में मृतकों को दफनाये जाने के तरीके 1 से 3 पत्थर से ढकी विभिन्न प्रकार की कब्रें 4. पत्थर के घेरे में गड्ढे वाली कब्र 5. पत्थर के घेरे में पथरीले ताबूत वाली कब्र 6. मिट्टी की शवपेटिका वाली कब्र

11.4.2 महापाषाण युगीन संस्कृतियों की उत्पत्ति

महापाषाण कालीन संस्कृति का प्रारम्भ दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के अंत और प्रथम सहस्राब्दी ई. पू. के प्रारम्भ में हुआ, बाद की कई शताब्दियों तक यह परम्परा जारी रही। कुछ विद्वानों का मत है कि महापाषाण युग के लोग एक ही सांस्कृतिक समूह के नहीं थे तथा दक्षिण भारतीय कब्रों पर कई क्षेत्रों के प्रभाव के कारण यह कब्रें कई संस्कृतियों का मिश्रण प्रतीत होती हैं। प्रथमतः महापाषाण युग के कुछ शवाधान मध्य एशिया, ईरान अथवा काकेशस क्षेत्र के अवशेष हैं और हिन्द-यूरोपीय भाषाएँ बोलने वाले इन क्षेत्रों के लोगों ने ऐसी परम्परा की शुरुआत की होगी। इसके अतिरिक्त कुछ शवाधानों में दकन के स्थानीय नवपाषाण युगीन ताम्र पाषाण युगीन शवाधान के तरीके अपनाये गए प्रतीत होते हैं।

कुछ विद्वानों ने महापाषाण स्थलों को आर्यों अथवा द्रविड़ों के अवशेषों के रूप में माना है। परन्तु इस विचार को स्वीकार करना सम्भव नहीं है, यह तथ्य लगभग निश्चित है कि यह कब्र स्थल एक ऐसी स्थिति में अस्तित्व में आये जब उत्तर व दक्षिण भारत के विभिन्न समुदायों में मेल-जोल की प्रक्रिया काफी अधिक थी जैसी कि पहले चर्चा की गई इन क्षेत्रों में खेतिहर पशुपालक समुदाय लोहे के प्रयोग से काफी पहले से मौजूद थे। इन समुदायों की मृतकों को दफनाने की बहुत सी रस्में लौह युग तक जारी रहीं, मिट्टी के पात्रों में शवों को दफनाने की परम्परा ताम्र पाषाण युगीन इनामगांव में प्रचलित थी। महापाषाणीय दफनाने के बहुत से तरीके सम्भवतया स्थानीय सांस्कृतिक परम्पराओं से लिए गये थे। कब्रों से प्राप्त बहुत सी वस्तुएं भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित क्षेत्रों के साथ संबधों की ओर संकेत करती हैं। कुछ विशेष प्रकार के बर्तन जैसे

कि पायों वाले प्याले जो इन कब्रों में पाये गये हैं बहुत कुछ उन प्यालों की तरह हैं जो भारत के उत्तर-पश्चिम में और ईरान में इससे भी पुरानी कब्रों में मिले हैं। इसी तरह घोड़ों की हड्डियाँ और घोड़ों के प्रयोग से संबंधित अन्य वस्तुओं का यहाँ मिलना इस ओर संकेत करता है कि घुड़सवारी करने वाले लोग इस क्षेत्र में पहुँच गये थे। निश्चित ही घोड़े मध्य एशिया से लाये गये होंगे क्योंकि भारत में जंगली घोड़े भी नहीं पाये जाते थे। घोड़ों के दफनाने का उदाहरण, नागपुर के निकट जुनापनी से प्राप्त होता है, मस्की और पिकलीहाल से प्राप्त शिला चित्रों में बहुत से घुड़सवार धातु की कुल्हाड़ियाँ ले जाते दिखाये गए हैं। यह सब तथ्य इन क्षेत्रों को भारत के उत्तर-पश्चिम में रहने वाले समुदायों के साथ संबंधों पर प्रकाश डालते हैं। अतः लौह युग के मृतकों के अंतिम संस्कार के तरीके आंतरिक और विदेशी रस्मों का मिश्रण दर्शाते हैं।

11.4.3 भौतिक संस्कृति

पूर्व की भांति ही लौह युग की भौतिक संस्कृति लोहे तथा अन्य धातु की वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट किस्म के बर्तनों के आधार पर रेखांकित होती है।

1 **बर्तन**: कब्रों की खुदाई से प्राप्त बर्तन काले एवं लाल मृद्भाण्ड हैं। विशिष्ट बर्तनों में छिछली तश्तरी, प्याले, गहरे प्याले जो कि गोल आधार वाले तथा कोन के आकार वाले हैं जिनके ऊपर दस्ता अथवा घुंडी वाले ढक्कन थे, बर्तन रखने के गोलाकार स्टैंड तथा गोल आधार वाले पानी के बड़े मटके हैं।

2 **लोहे तथा अन्य धातुओं की वस्तुएँ**: महापाषाण युग के सभी स्थलों, विदर्भ (मध्य भारत) में नागपुर के समीप जूनापनी से लेकर दक्षिण में आदिचानालूर तक लगभग 1500 कि.मी. के क्षेत्र में लोहे की वस्तुएं समान रूप से पायी गयी हैं। लोहे की विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ : चपटी लोहे की कुल्हाड़ियाँ जिसमें पकड़ने के लिए लोहे का दस्ता होता था, उभरे हुए चपटे किनारे के विभिन्न फावड़े, बेलचे, खुरची, कुदालें, हँसिए, फरसे, फान, सब्बल, बरछे, छुरे, छेनी अथवा बसुले, तिपाइयाँ बर्तन के स्टैड, तश्तरियाँ, लटकाने वाले लैम्प, कटारें, तलवारें (जिनमें से कुछ के दस्तों में कांस्य के आभूषण जड़ें हैं) तीर के फल तथा बरछे के फल जिनके पात्र खोखले हैं, विशेष अवसरों के लिए सीप जड़ी कुल्हाड़ियाँ, लोहे के त्रिशूल आदि हैं। इन औजारों के अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार की वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं। जैसे घोड़े के सामान जिनमें लगाम का लोहे का वह हिस्सा जो घोड़े के मुंह में होता है तथा फंदे के आकार वाले किनारों वाली दो छड़ें (जो कि जूनापानी से प्राप्त हुई हैं), फंदे के आकार वाली नाक तथा मुँह पर लगाने वाली छड़ें (जो कि सनूर से प्राप्त हुई हैं) आदि। धातु की अन्य वस्तुओं में सबसे अधिक संख्या में ताम्र एवं कास्य की घंटियाँ पाई गयी हैं जो कि घोड़े अथवा गाय, बैलों की घंटियों के रूप में इस्तेमाल की जाती रही होंगी, सोने अथवा अर्ध बहुमूल्य पत्थरों के मनके भी इन स्थानों से मिले हैं।

11.4.4 जीवन निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था

खुदाई में लौह युग की बस्तियाँ काफी कम संख्या में प्राप्त हुई हैं अतः दक्षिण भारतीय महापाषाण युग के निर्माताओं की अर्थव्यवस्था की स्पष्ट स्थिति का अनुमान लगाना कठिन है। कुछ स्थानों पर भेड़/बकरी तथा गाय, बैलों के अवशेष तथा बाजरा और दालें प्राप्त हुई हैं।

कब्रों की खुदाई से प्राप्त कब्रों में रखी जाने वाली लोहे की वस्तुओं की समरूपता इन वस्तुओं की विशेषता है। नागपुर के निकट जूनापानी से लेकर दक्षिण में आदिचानालूर तक एक ही प्रकार की लोहे की वस्तुओं का पाया जाना लोहे का काम करने वाले कारीगरों के काफी हद तक संगठित होने की संभावना को सिद्ध करता है। एक विद्वान के अनुसार, तमिलनाडु एवं कर्नाटक में यह मध्यपाषाण युगीन लोग कच्चे लोहे की खानों का पता लगाने तथा विभिन्न लोहे की वस्तुएँ तैयार करने में दक्ष थे, वे अन्य वस्तुओं के साथ लोहे की चीजों का व्यापार भी करते थे तथा धीरे-धीरे सामुदायिक जीवन के रूप में गांवों में बस गए। लेकिन एक अन्य विद्वान का मत है कि यह समूह खानाबदोश पशुपालक समूह थे जो
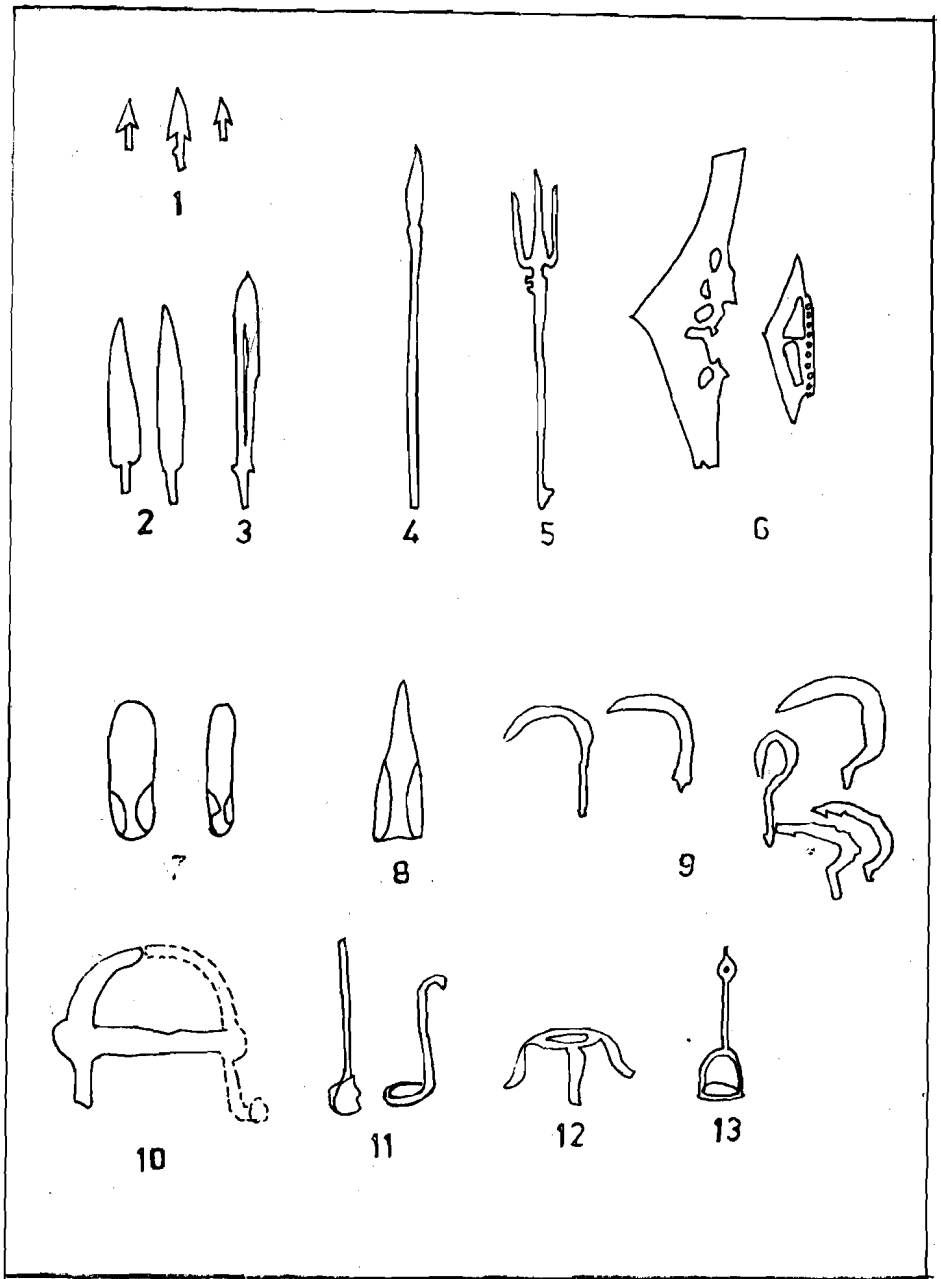
चित्र 25. दक्षिण भारत की महापाषाण युगीन कब्रों से प्राप्त लोहे के औज़ार 1. तीर के फलक 2. छुरे 3. तलवार 4. भाले के फलक 5. त्रिशूल 6. खड्ग 7. कुदाली 8. हल का फाल 9. हँसिया 10. रकाब नुमा वस्तु 11. कल्छी 12. तिपाई 13. लैम्प

कि भेड़/बकरी पालने पर अधिक निर्भर थे। महापाषाणीय स्थलों के पास जो बस्तियाँ पाई गई हैं उनमें पुरातात्विक अवशेष बहुत कम संख्या में मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के लोग किसी एक स्थान पर बहुत कम समय तक रहते थे। ऐसा भी संभव है कि लोहे की जानकारी होने के बाद यह लोग नये क्षेत्रों में बस गये। इस प्रकार यहाँ कुछ लोग तो घुमक्कड़ पशुपालकों का जीवन व्यतीत करते रहे जबकि कुछ लोग नये क्षेत्रों को बसाकर स्थायी जीवन पद्धति पर चलने लगे जहाँ भी नई बस्तियाँ पुरानी बस्तियों की परम्परा में बसी लोग अपने पुराने तरीकों से ही रहते रहे, लोहे के औजारों के प्रयोग से यह लोग ग्रेनाइट पत्थर का उपयोग भी कब्रों के लिए कर सके। यही वह खेतिहर पशुपालक समुदाय हैं जिन्होंने ईसा बाद की प्रारंभिक शताब्दियों के ऐतिहासिक चरण में प्रवेश किया, इनका प्रारंभिक विवरण हमें संगम साहित्य में मिलता था। कुछ कब्रों में रोमन सिक्के मिले हैं जिनसे ऐसा आभास होता है कि यह एक बड़े क्षेत्र में व्यापारिक गतिविधियों में भाग ले रहे थे।

बोध प्रश्न 2

1 दक्षिण भारत में लौह युग के विषय में लगभग 100 शब्दों में लिखें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2 दक्षिण भारतीय महापाषाण युग के निर्माताओं की अर्थव्यवस्था पर पांच पंक्तियाँ लिखें।

....
....
....
....
....

11.5 सारांश

ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में दक्षिण भारत में खेतिहर समुदायों का उदय हुआ। इसी काल में बड़ी संख्या में घुमक्कड़ पशुपालक समुदायों का भी उदय हुआ। खेतिहर वर्ग अधिकांशतया: चना, जौ, और कई किस्मों का बाजरा उगाया करते थे, पशुपालक समुदाय भेड़, बकरी तथा गाय, बैल आदि पालते थे। लगभग दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के प्रारम्भिक काल में इन समुदायों ने तांबे और कांस्य के औजारों का प्रयोग आरम्भ किया। इन लोगों के कांस्य के बहुत से औजार उत्तर पश्चिमी भारत के औजारों से मिलते-जुलते हैं। दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के अंत तक इस क्षेत्र में लोहे का प्रयोग भी होने लगा। इसी काल में महापाषाणीय दफनाने के तरीके भी शुरू हुए। इसने बस्तियों की योजना को भी प्रभावित किया क्योंकि इन समुदायों ने अपने मृतकों को बस्तियों के अलग हट कर दफन करना शुरू किया। परन्तु खेतिहर उन्हीं फसलों को उगाते रहे और पशुपालक भी पुरानी जीवन पद्धति पर चलते रहे। लेखन की परम्परा शुरू होने पर धीरे-धीरे विकास के इस चरण का विलय दक्षिण भारत के इतिहास में हो गया।

11.6 शब्दावली

शुष्क कृषि : खेती की ऐसी पद्धति जिसमें ऊपर भूमि की हमेशा गुडाई की जाती है, जिससे थोड़ी वर्षा के पानी का लाभ पौधों को मिलता है और पानी को जल्दी भाप बनने से रोकता है शुष्क देशों में यह पद्धति अधिक अपनाई जाती है।

जोर्वे बर्तन : द्वितीय सहस्राब्दी ई. पू. के लाल रंगे हुये मिट्टी के बर्तन जो सबसे पहले महाराष्ट्र में जोर्वे नामक स्थान पर मिले।

आर्य : वह समुदाय जो इंडो यूरोपी (Indo European) भाषाएँ बोलते थे और जिन्होंने वेदों की संरचना की।

दक्षिण : वह लोग जो दक्षिण की भाषाएं बोलते थे।

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) (×)
  ii) (✓)
  iii) (×)
  iv) (✓)

2 देखें उपभाग 11.2.1

3 चूंकि अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन दोनों पर ही आधारित थी, अतः इसे पशुपालन अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है।

4 आपके उत्तर में निम्न तथ्य होने चाहिए :
यह टीले मूलतः गाय, बैलों के बाड़े थे जहां गोबर इकट्ठा होता था; टीले गोबर जलाए जाने के कारण बने तथा गोबर जलना संभवतः नवपाषाण युगीन समुदायों के कर्मकांड का एक अंग था। भाग 11.3 भी देखें।

बोध प्रश्न 2

1 देखें उपभाग 11.4.1 एक चरण को दूसरे चरण से भिन्न करने वाली विशेषताएं लिखें।

2 देखें उपभाग 11.4.3